[2018] 9 एस.सी.आर. 430

नारायण ग्रामणी एवं अन्य

बनाम

मारिअम्मल एवं अन्य

(2009 की दीवानी अपील संख्या 5057)

11 सितम्बर, 2018

[अभय मनोहर सप्रे तथा विनीत सरन, न्यायमूर्तिगण]

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 : धारा 100 — द्वितीय अपील — द्वितीय अपील का निर्णय करते समय उच्च न्यायालय की शक्ति — उसकी परिधि एवं विस्तार — तथ्यों के आधार पर, द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों की अपील स्वीकार की और अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा डिक्री की गई वादियों की वाद को निरस्त कर दिया — अपील में, यह अभिनिर्धारित किया गया : उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश विधिसंगत रूप से स्थिर रहने योग्य नहीं है — उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील को केवल एक महत्वपूर्ण विधि प्रश्न को निरूपित कर स्वीकार किया, अर्थात् क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय प्रतिवादियों की प्रथम अपील को खारिज करते समय वादभूमि के संबंध में एक पूर्व वाद को, जो उन्हीं पक्षकारों के बीच नहीं था, विचार में लेकर उचित था — उच्च न्यायालय यह देखने में विफल रहा कि भले ही उक्त प्रश्न का उत्तर प्रतिवादियों के पक्ष में दिया जाता, तथापि वादियों की वाद को तब तक निरस्त नहीं किया जा सकता था जब तक कि उच्च न्यायालय वादभूमि पर वादी के स्वामित्व के मुख्य प्रश्न की आगे जाँच न करता, जिसे अधीनस्थ न्यायालयों ने वादियों के पक्ष में निर्धारित किया था — उच्च न्यायालय द्वारा वादभूमि पर वादियों के स्वामित्व के प्रश्न पर कोई भी महत्वपूर्ण विधि प्रश्न निरूपित न किए जाने के कारण, धारा 100 की उपधारा (5) के आलोक में, उसे अपने द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार में उक्त प्रश्न की जाँच करने का कोई अधिकार नहीं था — इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने स्वामित्व के प्रश्न को सतही

रूप से स्पर्श किया, जो किया जाना विधिसम्मत नहीं था — साथ ही, प्रतिषेध न्याय तथा स्वामित्व—दोनों प्रश्नों की स्वतंत्र रूप से, अपने-अपने गुण-दोष के आधार पर, जाँच की जानी आवश्यक थी, जो नहीं की गई — अतः, प्रकरण को उच्च न्यायालय को प्रत्यावर्तित किया गया।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने—

अभिनिर्धारित किया : 1.1 द्वितीय अपील का निर्णय करते समय उच्च न्यायालय की शक्तियों की परिधि एवं विस्तार को दृष्टिगत रखते हुए, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों की द्वितीय अपील स्वीकार करते हुए त्रुटि की तथा महत्वपूर्ण विधि प्रश्न का उत्तर देकर वादियों की वाद को निरस्त करने में भी त्रुटि की। [कंडिका 17] [437-एफ-जी]

1.2 आक्षेपित आदेश के अवलोकन मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील को केवल एक ही महत्वपूर्ण विधि प्रश्न को निरूपित कर स्वीकार किया था, अर्थात् क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय वादभूमि के संबंध में एक पूर्व वाद को, जो समान पक्षकारों के मध्य नहीं था, विचार में लेकर प्रतिवादियों की प्रथम अपील को खारिज करने में उचित था। उच्च न्यायालय ने यह धारित किया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ऐसा करने में उचित नहीं था, क्योंकि उक्त पूर्व वाद वर्तमान वादियों एवं प्रतिवादियों के मध्य नहीं था, बल्कि भिन्न पक्षकारों के मध्य था, और इसलिए ऐसे वाद में दिया गया कोई भी निर्णय वर्तमान पक्षकारों के मध्य वाद में प्रतिषेध न्याय के रूप में प्रवर्तित नहीं हो सकता। इसके परिणामस्वरूप अपील स्वीकार की गई और वाद को निरस्त कर दिया गया। उच्च न्यायालय (एकल न्यायाधीश) यह देखने में विफल रहा कि भले ही उक्त प्रश्न का उत्तर प्रतिवादियों के पक्ष में दिया जाता, तथापि वादियों की वाद—और वह भी पूर्णतः—तब तक निरस्त नहीं की जा सकती थी, जब तक कि उच्च न्यायालय वादभूमि पर वादियों के स्वामित्व के मुख्य प्रश्न की आगे जाँच न करता, जिसे अधीनस्थ दोनों न्यायालयों ने गुण-दोष के आधार पर वादियों के पक्ष में निर्धारित किया था। [कंडिका 18–20] [431-एच; 438-ए-सी]

1.3 उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि वह वादभूमि पर वादियों के स्वत्व से संबंधित प्रश्न की जाँच करता, जिसे अधीनस्थ दोनों न्यायालयों ने वादियों के पक्ष में इस आधार पर निर्धारित किया था कि वादियों ने अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर वादभूमि पर अपना स्वत्व सिद्ध कर दिया था, जबकि प्रतिवादी, यद्यपि स्वत्व का दावा करते थे, उसे सिद्ध करने में असफल रहे। [कंडिका 21] [438-डी-ई]

1.4 उच्च न्यायालय ने एक अन्य त्रुटि तब की जब उसने वादभूमि पर वादियों के स्वामित्व के प्रश्न पर कोई भी महत्वपूर्ण विधि प्रश्न निरूपित नहीं किया। जब तक कोई महत्वपूर्ण विधि प्रश्न निरूपित नहीं किया जाता, तब तक उच्च न्यायालय को अपने द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार में उक्त प्रश्न की जाँच करने का कोई अधिकार नहीं था। अन्य शब्दों में, उच्च न्यायालय द्वारा केवल एक ही प्रश्न निरूपित किया गया, जो वादभूमि के स्वामित्व के प्रश्न से संबंधित नहीं था, इसलिए उसे स्वामित्व के प्रश्न की जाँच करने का कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं था। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की उपधारा (5) के आलोक में ऐसा करना अनुमेय नहीं था, क्योंकि उक्त उपधारा उच्च न्यायालय को केवल निरूपित प्रश्न पर ही अपील का निर्णय करने का अधिकार प्रदान करती है, उससे परे नहीं। [कंडिका 22–23] [438-एफ-एच]

1.5 उच्च न्यायालय धारा 100 की उपधारा (5) के परंतुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, आवश्यकतानुसार, द्वितीय अपील की सुनवाई के समय भी एक या अधिक अतिरिक्त महत्वपूर्ण विधि प्रश्न निरूपित कर सकता था। इससे उच्च न्यायालय को वादभूमि पर स्वामित्व के प्रश्न की सम्यक् दृष्टि से जाँच करने में सुविधा होती। तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा नहीं किया गया। [कंडिका 24] [439-ए-बी]

1.6 उच्च न्यायालय ने निरूपित प्रश्न की जाँच करते समय स्वामित्व के प्रश्न को सतही रूप से भी स्पर्श किया, जबकि स्वामित्व के प्रश्न पर किसी भी महत्वपूर्ण विधि प्रश्न के निरूपित न किए जाने के कारण ऐसा किया जाना अनुमेय नहीं था। इसके अतिरिक्त, उच्च

न्यायालय यह भी देखने में विफल रहा कि प्रतिषेध न्याय का प्रश्न तथा स्वामित्व का प्रश्न परस्पर स्वतंत्र प्रश्न थे और एक पर लिया गया निर्णय दूसरे का उत्तर नहीं हो सकता था। अन्य शब्दों में, दोनों प्रश्नों की अपने-अपने गुण-दोष के आधार पर स्वतंत्र रूप से जाँच किया जाना आवश्यक था। यह, तथापि, दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की उपधाराओं (4) एवं (5) के अधीन दोनों प्रश्नों पर महत्वपूर्ण विधि प्रश्न निरूपित किए जाने के पश्चात ही संभव था, जो इस प्रकरण में नहीं किया गया। [कंडिका 25] [439-बी-डी]

1.7 चूँकि उच्च न्यायालय वादियों के स्वामित्व के प्रश्न की, महत्वपूर्ण विधि प्रश्न(ओं) के निरूपण के अभाव में, गुण-दोष के आधार पर जाँच करने में विफल रहा, अतः प्रकरण को उच्च न्यायालय को प्रत्यावर्तित किया जाना आवश्यक है ताकि यह निर्णय किया जा सके कि अधीनस्थ दोनों न्यायालयों ने अपने-अपने क्षेत्राधिकार में वादियों द्वारा प्रस्तुत मौखिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर वादभूमि पर उनका स्वत्व सिद्ध मानने में सही निर्णय दिया था या नहीं तथा, यदि हाँ, तो क्या ऐसे निष्कर्ष को बनाए रखा जाना चाहिए या नहीं। [कंडिका 27] [439-ई-एफ]

1.8 आक्षेपित आदेश विधिसंगत रूप से स्थिर रहने योग्य नहीं है और उसे निरस्त किया जाता है। प्रकरण को उच्च न्यायालय को यह निर्देश देते हुए प्रत्यावर्तित किया जाता है कि वह वादभूमि पर वादियों के स्वामित्व के प्रश्न पर समुचित रूप से महत्वपूर्ण विधि प्रश्न(ओं) को निरूपित कर, विधि के अनुरूप, गुण-दोष के आधार पर द्वितीय अपील का नवसिरे से निर्णय करे तथा यह परख करे कि उक्त प्रश्न पर अधीनस्थ दोनों न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष किसी त्रुटि से ग्रस्त हैं या नहीं। [कंडिका 28] [439-जी-एच]

संतोष हज़ारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी (2001) 3 एससीसी 179 : [2001] 1 एससीआर 948; *सूरत सिंह बनाम सिरी भगवान एवं अन्य* (2018) 4 एससीसी 562 — संदर्भित।

वाद विधि संदर्भ

[2001] 1 एस. सी. आर. 948 संदर्भित कंडिका 16

(2018) 4 एस. सी. सी. 562 संदर्भित कंडिका 16

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2009 की दीवानी अपील संख्या 5057

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 1995 की द्वितीय अपील संख्या 632 में दिनांक 09.07.2007 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ताओं के लिए : एम. एस. एम. असैथम्बी, वी. बालाजी, राकेश के. शर्मा, सी. कन्नन, सुश्री श्रीप्रधा कृष्णन, ए. टी. एम. संपत, अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय प्रस्तुत किया गया—

अभय मनोहर सप्रे, न्यायमूर्ति 1. यह अपील वादियों द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा द्वितीय अपील संख्या 652 वर्ष 1995 में दिनांक 09.07.2007 को पारित अंतिम निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 से 5 द्वारा दायर द्वितीय अपील स्वीकार की गई तथा अतिरिक्त अधीनस्थ न्यायाधीश, चिंगलपट्टू द्वारा अपील संख्या 72 वर्ष 1993 में दिनांक 05.08.1994 को पारित निर्णय एवं डिक्री को निरस्त करते हुए, वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वाद को खारिज कर दिया गया।

2. अपील में संलिप्त प्रश्नों को, जो सीमित दायरे में हैं, सम्यक् रूप से समझने के लिए कुछ तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख आवश्यक है।

3. अपीलकर्ता संख्या 1 एवं 2 वादी हैं, जबकि अपीलकर्ता संख्या 3 तृतीय वादी—तिरुनावुक्करासु—का विधिक प्रतिनिधि है, जिनकी वाद लंबित रहते मृत्यु हो गई थी। उत्तरदाता दीवानी वाद में प्रतिवादी हैं।

4. एक ही परिवार के सदस्य होने का दावा करने वाले तीनों वादियों ने वेम्बनूर ग्राम, कडापक्कम फिरका स्थित भूमि संख्या 294/1 (पट्टा संख्या 491), पुराना पैमाश संख्या

201/8, जिसे पुनः क्रमांकित कर सर्वे संख्या 399/4 किया गया, क्षेत्रफल 1.08 एकड़ (आगे "वादभूमि" कहा गया है) के संबंध में घोषणा एवं स्थायी निषेधाज्ञा की प्रार्थना करते हुए प्रतिवादियों के विरुद्ध एक दीवानी वाद दायर किया।

5. वादियों ने वादभूमि पर अपने स्वत्व का स्रोत अपने पूर्व स्वत्वधारी के माध्यम से, तथा वादभूमि के संबंध में एस्टेट प्रबंधक द्वारा जारी पट्टा के साथ संबद्ध बताते हुए प्रतिपादित किया। वादियों के अनुसार, वादियों के मध्य पारिवारिक विभाजन हुआ था, जिसमें वादभूमि उनके हिस्से में आई। वादियों का यह भी आरोप था कि वे वादभूमि के कब्जे में रहे हैं, उन्होंने उसमें धनराशि निवेश की है तथा राजस्व करों का भुगतान करते रहे हैं। वादियों ने यह भी आरोप लगाया कि प्रतिवादी बिना किसी विधिक प्राधिकार के वादभूमि पर उनके कब्जे में व्यवधान उत्पन्न करने का प्रयास कर रहे हैं तथा वादभूमि पर अपने स्वत्व का भी दावा कर रहे हैं, जबकि उनके पक्ष में ऐसा कोई स्वत्व नहीं है; अतः वाद दायर कर वादभूमि के संबंध में घोषणा एवं स्थायी निषेधाज्ञा की मांग करना आवश्यक हो गया।

6. प्रतिवादियों ने अपना लिखित कथन दायर कर वादियों के वादभूमि पर किए गए दावे का खंडन किया। उनके अनुसार, वे वादभूमि के स्वामी हैं, क्योंकि उन्होंने दिनांक 15.02.1967 को रुपये 200/- में मुथु मुदलियार तथा उसके पुत्र राजाराम मुदलियार से विक्रय विलेख के माध्यम से उक्त भूमि क्रय की थी, जो प्रतिवादियों के अनुसार वादभूमि के स्वामी थे। प्रतिवादी संख्या 1 ने यह भी दावा किया कि वह वादभूमि के कब्जे में है तथा उसका कृषिकरण कर रहा है।

7. विचारण न्यायालय ने दो मुद्दे निर्धारित किए, अर्थात्—(1) क्या वादी घोषणा एवं स्थायी निषेधाज्ञा की मांग के हकदार हैं; तथा (2) यदि हाँ, तो किस प्रकार की राहत के। पक्षकारों ने अपना-अपना मौखिक एवं अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तुत किया। दिनांक 23.11.1993 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा विचारण न्यायालय ने वादियों के वाद को डिक्री किया। यह धारित किया गया कि वादी अपने द्वारा प्रस्तुत अभिलेखों के आधार पर वादभूमि पर अपना स्वत्व

सिद्ध करने में सफल रहे हैं; कि वादी वादभूमि के कब्जे में हैं; और इसलिए वे वादभूमि पर अपने स्वत्व की घोषणा प्राप्त करने के हकदार हैं तथा प्रतिवादियों को वादभूमि पर उनके (वादियों के) शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने हेतु स्थायी निषेधाज्ञा प्राप्त करने के भी हकदार हैं।

8. प्रतिवादी स्वयं को क्षुब्ध अनुभव करते हुए अपर अवर न्यायाधीश के समक्ष प्रथम अपील (अपील वाद संख्या 72/1993) लेकर गए। दिनांक 05.08.1994 के निर्णय द्वारा अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादियों की अपील खारिज कर दी तथा विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री की पुष्टि की।

9. इसके पश्चात प्रतिवादियों ने मद्रास उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण विधि प्रश्न पर द्वितीय अपील को स्वीकार किया :—

"क्या वही न्यायाधीश, किसी अपील को इस आधार पर खारिज कर सकता है कि उसने भिन्न पक्षकारों के विरुद्ध एक पूर्व अपील में अपीलकर्ताओं का मामला पहले ही अस्वीकार कर दिया था, जबकि न तो किसी पक्ष द्वारा प्रतिषेध न्याय अथवा निर्णय द्वारा प्रतिषेध का अभिवचन किया गया हो, विशेष रूप से तब, जब वही विषय उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील के रूप में निर्णयाधीन हो।"

10. आक्षेपित निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय ने अपील स्वीकार की तथा अधीनस्थ दोनों न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री को निरस्त कर दिया और परिणामस्वरूप वाद को खारिज कर दिया, जिसके विरुद्ध वादियों द्वारा इस न्यायालय में विशेष अनुमति के माध्यम से वर्तमान अपील दायर की गई।

11. इस अपील में विचारण हेतु उत्पन्न संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय प्रतिवादियों की अपील स्वीकार कर, और उसके परिणामस्वरूप, उन वादियों की वाद को खारिज करने में उचित था, जिसे अधीनस्थ दोनों न्यायालयों द्वारा डिक्री किया गया था।

12. अपीलकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री एम. एस. एम. असैथम्बी उपस्थित हुए। सूचना के बावजूद उत्तरदाताओं की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

13. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता को सुनने तथा वाद के अभिलेखों के अवलोकन के पश्चात हम अपील स्वीकार करने के पक्ष में हैं और आक्षेपित निर्णय को निरस्त करते हुए प्रकरण को उच्च न्यायालय को प्रत्यावर्तित करते हैं, ताकि वह नीचे इंगित किए गए अनुसार उपयुक्त महत्वपूर्ण विधि प्रश्नों को निरूपित कर, विधि के अनुरूप, गुण-दोष के आधार पर अपील का नवसिरे से निर्णय करे।

14. प्रकरण के तथ्यों की जाँच करने से पूर्व, दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 (आगे "संहिता" कहा गया है) की धारा 100 की परिधि को देखना आवश्यक है, जो उच्च न्यायालय को द्वितीय अपीलों का निर्णय करने की शक्ति प्रदान करती है। वास्तव में, इस विषय को इस न्यायालय के अनेक निर्णयों में स्पष्ट किया जा चुका है और इसलिए यह अब पुनः विचारणीय नहीं रह गया है।

15. संहिता की धारा 100 इस प्रकार है :—

"100. द्वितीय अपील.— (1) जब तक इस संहिता के पाठ में या किसी अन्य वर्तमान में प्रवृत्त विधि द्वारा स्पष्ट रूप से अन्यथा उपबंधित न हो, किसी भी ऐसे प्रत्येक डिक्री के विरुद्ध, जो अपील में किसी ऐसे न्यायालय द्वारा पारित की गई हो जो उच्च न्यायालय के अधीनस्थ हो, उच्च न्यायालय में अपील निहित होगी, यदि उच्च न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि वाद में विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न अंतर्विष्ट है।

(2) इस धारा के अंतर्गत एकपक्षीय रूप से पारित अपीलीय डिक्री के विरुद्ध भी अपील निहित हो सकती है।

(3) इस धारा के अंतर्गत की गई अपील में, अपील ज्ञापन में अपील में अंतर्विष्ट विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाएगा।

(4) जहाँ उच्च न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि किसी वाद में विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न अंतर्विष्ट है, वहाँ वह उस प्रश्न को प्रतिपादित करेगा।

(5) अपील की सुनवाई प्रतिपादित किए गए उस प्रश्न पर की जाएगी और अपील की सुनवाई के समय उत्तरदाता को यह तर्क करने की अनुमति होगी कि वाद में ऐसा कोई प्रश्न अंतर्विष्ट नहीं है:

परन्तु यह कि इस उपधारा में निहित कोई भी बात न्यायालय की उस शक्ति को समाप्त करने या सीमित करने के रूप में नहीं मानी जाएगी कि वह, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों सहित, स्वयं द्वारा प्रतिपादित किसी अन्य विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न पर भी अपील की सुनवाई करे, यदि वह इस बात से संतुष्ट हो कि वाद में ऐसा प्रश्न अंतर्विष्ट है।"

16. धारा 100 की उपधारा (1) यह कहती है कि द्वितीय अपील को उच्च न्यायालय द्वारा केवल तभी ग्रहण किया जाएगा, जब उच्च न्यायालय इस बात से "संतुष्ट" हो कि वाद में "विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न" अंतर्विष्ट है। उपधारा (3) अपीलकर्ता पर यह अनिवार्य दायित्व आरोपित करती है कि वह अपील ज्ञापन में अपील में अंतर्विष्ट "विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न" का सटीक रूप से उल्लेख करे। उपधारा (4) यह उपबंध करती है कि जहाँ उच्च न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि वाद में विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न अंतर्विष्ट है, वहाँ वह उस प्रश्न को प्रतिपादित करेगा। दूसरे शब्दों में, जब अपीलकर्ता या उसके विद्वान अधिवक्ता को सुनने के पश्चात, जैसा भी मामला हो, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अपील में विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न अंतर्विष्ट है, तब उच्च न्यायालय के लिए उस प्रश्न को प्रतिपादित करना अनिवार्य है और तत्पश्चात अपील ज्ञापन तथा उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के प्रश्न सहित उत्तरदाता को सूचना जारी करने का निर्देश देना होता है। उपधारा (5) यह उपबंध करती है कि अपील की सुनवाई केवल उसी प्रश्न पर की जाएगी, जिसे उच्च न्यायालय ने उपधारा (4) के अंतर्गत प्रतिपादित किया है। दूसरे शब्दों में, द्वितीय अपील का निर्णय करने के संबंध में उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार केवल उसी प्रश्न तक

सीमित है, जिसे उच्च न्यायालय ने उपधारा (4) के अंतर्गत प्रतिपादित किया है। तथापि, उत्तरदाता को अपील की सुनवाई के समय उपधारा (5) के अंतर्गत यह अधिकार दिया गया है कि वह यह आपत्ति उठा सके कि उपधारा (4) के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित प्रश्न अपील में अंतर्विष्ट नहीं है। उत्तरदाता को सुनवाई के समय ऐसी आपत्ति उठाने का यह अधिकार इसलिए दिया गया है, क्योंकि उच्च न्यायालय प्रश्न का प्रतिपादन प्रवेश के चरण पर करता है, जो कि उत्तरदाता को अपील की सूचना जारी किए जाने से पूर्व का चरण होता है। दूसरे शब्दों में, प्रश्न का प्रतिपादन उत्तरदाता की अनुपस्थिति में किया जाता है और इसलिए उपधारा (5) उसे यह सक्षम बनाती है कि वह सुनवाई के समय यह आपत्ति उठा सके कि प्रतिपादित प्रश्न अपील में उत्पन्न नहीं होता है। तथापि, उपधारा (5) का परंतुक उच्च न्यायालय की उस शक्ति को भी मान्यता देता है कि वह अपील की सुनवाई किसी अन्य विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न पर भी कर सके, जिसे प्रारंभ में उच्च न्यायालय ने उपधारा (4) के अंतर्गत प्रतिपादित नहीं किया था। किंतु इस शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा केवल तभी किया जा सकता है, जब अपील की सुनवाई के समय ऐसे अतिरिक्त विधि प्रश्न को प्रतिपादित करने के कारणों को अभिलिखित किया जाए। (देखें **संतोष हज़ारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी** [(2001) 3 एस. सी. सी. 179] तथा **सूरत सिंह** बनाम **श्री भगवान एवं अन्य** [(2018) 4 एस. सी. सी. 562]

17. द्वितीय अपील का निर्णय करते समय उच्च न्यायालय की शक्तियों के क्षेत्र और विस्तार को दृष्टिगत रखते हुए, जब हम इस वाद के तथ्यों की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो हम यह पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों की द्वितीय अपील को स्वीकार करते हुए त्रुटि की है और इसके अतिरिक्त विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देते हुए वादकारियों के वाद को निरस्त करने में भी त्रुटि की है। हम यह कथन एक से अधिक कारणों से कर रहे हैं।

18. प्रथम, आक्षेपित आदेश के मात्र अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील को केवल एक ही विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न का प्रतिपादन करके

स्वीकार किया था, अर्थात् यह कि क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादियों की प्रथम अपील को, वाद भूमि से संबंधित एक पूर्ववर्ती वाद को विचार में लेते हुए—जो कि समान पक्षकारों के मध्य नहीं था—निरस्त करना उचित समझा था।

19. उच्च न्यायालय ने यह अभिधारित किया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय का यह निष्कर्ष उचित नहीं था, क्योंकि पूर्ववर्ती वाद वर्तमान वादकारियों और प्रतिवादियों के मध्य नहीं था, बल्कि भिन्न पक्षकारों के मध्य था और, अतः, ऐसे वाद में दिया गया कोई भी निर्णय वर्तमान पक्षकारों के मध्य इस वाद में न्यायनिर्णय की बाध्यता के रूप में प्रवर्तित नहीं हो सकता था। इसके परिणामस्वरूप अपील स्वीकार कर ली गई और वाद को निरस्त कर दिया गया।

20. हमारे मत में, उच्च न्यायालय (एकल न्यायाधीश) यह देखने में असफल रहा कि भले ही उक्त प्रश्न का उत्तर प्रतिवादियों के पक्ष में दिया जाता, तथापि वादकारियों का वाद, विशेष रूप से संपूर्ण रूप से, तब तक निरस्त नहीं किया जा सकता था, जब तक कि उच्च न्यायालय वाद भूमि पर वादकारियों के स्वामित्व के मुख्य प्रश्न की आगे जाँच न करता, जिसे अधीनस्थ दोनों न्यायालयों ने गुण-दोष के आधार पर वादकारियों के पक्ष में निर्णीत किया था।

21. दूसरे शब्दों में, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि वह वाद भूमि पर वादकारियों के स्वत्व से संबंधित प्रश्न की जाँच करता, जिसे दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने वादकारियों के पक्ष में इस आधार पर निर्णीत किया था कि वादकारी दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर वाद भूमि पर अपना स्वत्व सिद्ध करने में सक्षम रहे, जबकि प्रतिवादी अपने द्वारा अभिकथित स्वत्व को सिद्ध करने में असफल रहे।

22. द्वितीय, उच्च न्यायालय ने एक और त्रुटि की, जब उसने वाद भूमि पर वादकारियों के स्वामित्व के प्रश्न पर विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न प्रतिपादित ही नहीं किया।

23. जब तक विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न प्रतिपादित नहीं किया गया था, तब तक उच्च न्यायालय को अपनी द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार में उक्त प्रश्न की जाँच करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय ने केवल एक ही प्रश्न प्रतिपादित किया था, जो वाद भूमि के स्वामित्व के प्रश्न से संबंधित नहीं था, अतः उसे स्वामित्व के प्रश्न की जाँच करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की उपधारा (5) के प्रकाश में यह अनुमेय नहीं था, क्योंकि वह उच्च न्यायालय को केवल प्रतिपादित प्रश्न पर ही अपील का निर्णय करने की शक्ति प्रदान करती है, उससे परे नहीं।

24. तृतीय, उच्च न्यायालय धारा 100 की उपधारा (5) के परंतुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, द्वितीय अपील की सुनवाई के समय भी, यथास्थिति, एक या दो अतिरिक्त प्रश्नों का प्रतिपादन कर सकता था। इससे उच्च न्यायालय को वाद भूमि के स्वामित्व के प्रश्न की सम्यक दृष्टि से जाँच करने में सुविधा होती। तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा नहीं किया गया।

25. चतुर्थ, उच्च न्यायालय ने प्रतिपादित प्रश्न की जाँच करते समय स्वामित्व के प्रश्न को भी सरसरी तौर पर स्पर्श किया, जो कि हमारे मत में, स्वामित्व के प्रश्न पर विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न प्रतिपादित न किए जाने के कारण, उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना संभव नहीं था। इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय यह भी देखने में असफल रहा कि न्यायनिर्णय की बाध्यता का प्रश्न और स्वामित्व का प्रश्न स्वतंत्र प्रश्न थे और एक पर दिया गया निर्णय दूसरे का उत्तर नहीं हो सकता था। दूसरे शब्दों में, दोनों प्रश्नों की जाँच उनके अपने-अपने गुण-दोष के आधार पर स्वतंत्र रूप से की जानी आवश्यक थी। यह, तथापि, केवल तभी संभव था जब दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की उपधाराओं (4) और (5) के अनुसार दोनों प्रश्नों पर विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न प्रतिपादित किए जाते। किंतु इस वाद में ऐसा नहीं किया गया।

26. उपर्युक्त चार कारणों के प्रकाश में, हम इस सुविचारित मत पर पहुँचते हैं कि आक्षेपित निर्णय विधिक रूप से स्थिर रहने योग्य नहीं है और, अतः, उसे निरस्त किया जाना आवश्यक है।

27. चूँकि उच्च न्यायालय ने विधि के महत्वपूर्ण प्रश्नों के प्रतिपादन के अभाव में वादकारियों के स्वामित्व के प्रश्न की गुण-दोष के आधार पर जाँच नहीं की, अतः यह वाद उच्च न्यायालय को इस प्रश्न के निर्णय के लिए प्रत्यावर्तित किया जाना आवश्यक है कि क्या अधीनस्थ दोनों न्यायालय अपने-अपने क्षेत्राधिकार में यह अभिधारित करने में सही थे कि वादकारियों ने अपने द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य (मौखिक/दस्तावेजी) के आधार पर वाद भूमि पर अपना स्वत्व सिद्ध कर दिया था और, यदि हाँ, तो क्या ऐसे निष्कर्ष को बनाए रखा जाना चाहिए या नहीं।

28. पूर्ववर्ती विवेचना के आलोक में, अपील सफल होती है और स्वीकार की जाती है। आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है। प्रकरण उच्च न्यायालय को इस निर्देश सहित प्रत्यावर्तित किया जाता है कि वह वाद भूमि पर वादकारियों के स्वामित्व के प्रश्न पर विधि के महत्वपूर्ण प्रश्नों का विधिवत प्रतिपादन करते हुए, विधि के अनुसार, द्वितीय अपील का पुनः गुण-दोष के आधार पर निर्णय करे तथा तत्पश्चात यह जाँच करे कि उक्त प्रश्न पर अधीनस्थ दोनों न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष किसी त्रुटि से ग्रस्त हैं या नहीं।

29. तथापि, हम यह स्पष्ट कर देते हैं कि उपर्युक्तानुसार अपील के पुनः निर्णय हेतु प्रकरण को उच्च न्यायालय को प्रत्यावर्तित करने का मत बनाते समय हमने विवाद के गुण-दोष पर अपने मन का प्रयोग नहीं किया है और, अतः, उच्च न्यायालय अपील का निर्णय विधि के अनुसार कठोरता से करेगा तथा हमारे किसी भी अवलोकन से प्रभावित नहीं होगा।

30. चूँकि यह प्रकरण काफ़ी पुराना है, अतः हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि वह इस निर्णय की तिथि से 6 माह के भीतर, यथासंभव शीघ्रता से, अपील का निर्णय करे।

निधी जैन   अपील स्वीकार की जाती है।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।